वैदिककालीन भारत में बाल शिक्षा के विकास का अध्ययन

उमा सैनी*
डॉ0 आनन्द श्रीवास्तव**

सारांश

भारत में शिक्षा का आरम्भ वैदिक काल (1500 BC – 500 BC) से माना जाता है। यद्यपि सिंधुघाटी (2500 BC–1500 BC) के लोगों को भी शिक्षा के बारे में जानकारी थी परन्तु जबतक उनकी लिपि को पढ़ा नहीं जाता तब तक उनकी शिक्षा के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। भारत की शिक्षा व्यवस्था सभ्यता एवं संस्कृति की द्योतक है। जिसकी नींव आध्यात्मिकता पर आधारित है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है। शिक्षा के महत्व को प्रमाणित करते हुए प्राचीन मनीषीयों ने शिक्षा को प्रकाश का स्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञान चक्षु और मनुष्य का तीसरा नेत्र माना था। शिक्षा से प्राप्त अन्तर्दृष्टि व्यक्ति की बुद्वि, विवेक और कुशलता में वृद्वि करती है। वैदिक कालीन युग में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के नैतिक चरित्र का निर्माण करना था। जिससे इनमें अच्छे संस्कारों का विकास हो सके। वैदिक काल मे प्राथमिक शिक्षा ऐसी थी जिस पर केवल ब्राह्मणों का ही आधिपत्य था। वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा के स्तर को अस्वीकार नही किया जा सकता। प्राथमिक शिक्षा का आरंभ 5 वर्ष की आयु में ''विद्यारम्भ संस्कार'' से होता था, और सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य था। सर्वप्रथम छात्र–छात्राओं को वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना सिखाया जाता था। इसके पश्चात् विद्यार्थी पढ़ना–लिखना सीखते थे, और तदुपरान्त व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। लिखने और पढ़ने के अलावा शिक्षा विशेष रूप से भाषा, साहित्य और शास्त्रों में दी जाती होगी। वैदिक शिक्षा पूर्णतः वेदों पर आधारित है। इसका स्वरूप भी वेदों पर ही आधारित है। वैदिक शिक्षा भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली है। वैदिक काल की शिक्षा के सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

प्रस्तावना

भारत में शिक्षा का आरम्भ वैदिक काल (1500 BC – 500 BC) से माना जाता है। यद्यपि सिंधुघाटी (2500 BC–1500 BC) के लोगों को भी शिक्षा के बारे में जानकारी थी परन्तु जबतक उनकी लिपि को पढ़ा नहीं जाता तब तक उनकी शिक्षा के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार भारत में औपचारिक रूप से शिक्षा का अस्तित्व वैदिक काल से माना जाता है। वैदिक युग से लेकर आज तक भारतवासियों के लिए शिक्षा का अभिप्राय यह है कि यह प्रकाश का एक स्रोत है। यह जीवन के विविध क्षेत्रों में हमेशा आलोकित करती है। इस काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। अतः कुछ लेखकों ने वैदिक कालीन शिक्षा को 'ब्राह्मणीय शिक्षा' और कुछ ने 'हिन्दु शिक्षा' की संज्ञा दी है।

प्राचीन शिक्षा का इतिहास हमारे अतीत का बोध कराता है कि हम क्या थे ? वर्तमान को आलोकित करता है कि हम क्या है ? जबकि भविष्य के प्रति लालसा उत्पन्न हुई है कि हम क्या होंगे ? इतिहास स्वच्छ दर्पण के रूप में मार्ग दर्शित करता है। अतः इतिहास के पृष्ठ बताते है कि भारत अतीत में वैभवशाली व गौरवमयी देशों में रहा है। यहां की शिक्षा व्यवस्था सभ्यता एवं संस्कृति की द्योतक है। जिसकी नींव आध्यात्मिकता पर आधारित है। प्राचीन भारत के मनीषी इस तथ्य से भलीभांति अवगत थे कि शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है। अतः उन्होने शिक्षा की ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का प्रतिपादन किया, जिसने केवल विशाल वैदिक, साहित्य को सुरक्षित रखा, वरन् ज्ञान के विविध क्षेत्रों में मौलिक विचारकों को भी जन्म दिया। जिससे भारत का भाल आज भी गर्व और गौरव से उन्नत है। इस दृष्टि से भारत की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए थ्ण्ण टॉमस ने लिखा है कि ''भारत में शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में अविर्भाव हुआ हो या जिसने इतना चिरस्थाई और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।''

* **शोध छात्रा, शिक्षा विभाग, बुनियादी BSPM IASE (D) University, सरदारशहर**
** **एसोसिएट प्रोफेसर, बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय (सिटी), सरदारशहर**

महत्व एवं आवश्यकता

वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश व शक्ति का स्रोत माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा को अत्याधिक महत्व देते हुए यह कहा जाता था कि इसकी सहायता से मनुष्य अपनी बुद्वि को तीव्र करके जीवन को सफल बना सकता है। प्राचीन काल में शिक्षा की अत्याधिक आवश्यकता थी। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्विक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके अपने सांसारिक और पारलौकिक जीवन को खुशहाल बना सकता था। धर्म तथा आध्यात्मिकता आदि काल से ही शिक्षा के विशेष अंग रहे हैं। यह मोक्ष और आत्मज्ञान के महत्वपूर्ण साधन माने गए हैं। शिक्षा के महत्व को प्रमाणित करते हुए प्राचीन मनीषीयों ने शिक्षा को प्रकाश का स्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञान चक्षु और मनुष्य का तीसरा नेत्र माना था। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्तियों के सभी संशयों का उन्मूलन और उनकी सब बाधाओं का निवारण किया जा सकता है। शिक्षा से प्राप्त अन्तर्दृष्टि व्यक्ति की बुद्वि, विवेक और कुशलता में वृद्वि करती है। शिक्षा व्यक्ति को वास्तविक शक्ति से सम्पन्न करती है। उसके सुख, सुयश एवं समृद्वि में योग देती है। शिक्षा कामधेनु के कल्पतरू के समान व्यक्ति की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करती है और उसका सर्वांगीण विकास करती है। शिक्षा के महत्व व आवश्यकता को देखते हुए डॉ0 ए.एस.अल्तेकर ने लिखा है कि ''शिक्षा को प्रकाश और शक्ति को ऐसा स्रोत माना जाता है जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियें तथा क्षमताओं का निरन्तर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनतीा है। शिक्षा सुधार का साधन है। ऋग्वेद में कहा है कि आंख, कान, नाक आदि में सभी मनुष्य समान है पर जो ज्ञानवान हो जाते हैं वे अन्यों से श्रेष्ठ होते हैं।

अक्षण्वन्तःकर्णवन्तःसखायो मनोजवेषु असमा वभूवुः। – ऋग्वेद 10/71/7

शिक्षा के द्वारा ही हम विवेकशील बनते है उचित अनुचित में भेद कर सकते है। इसी कारण विद्या के अभाव में मनुष्य का जीवन कुते की पूंछ की तरह व्यर्थ है।

शुनः पुच्छिमिव व्यर्थ जीवितं विद्याबिना
न गुह्म गोपने शक्तं न च दंश निवारणे।। – सुभाषित रत्न भण्डार

विद्या विहीन मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नही। फ्रांसीसी विद्वान मानतेन ने कहा है कि यदि शिक्षा के द्वारा छात्र का मस्तिष्क अधिक प्रवण नही बना, उसमें अधिक विवेक उत्पन्न नही हुआ तो अच्छा होता कि वह पढ़ने के बजाय टेनिस खेलता। मानतेन की यह उक्ति प्राचीन भारतीय शिक्षा पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। आधुनिक शिक्षाशास्त्री पेस्तालाजी भी शिक्षा द्वारा लगभग यही कार्य सिद्ध करना चाहता है। शिक्षा का अधिक महत्व इसलिए भी है कि इसे न चोर चुरा सकता है, न भाई बांट सकता है, न राजा छीन सकता है। यह तो ऐसा उत्कृष्ट धन है जो व्यय करने पर भी क्षीण नही होता बल्कि उत्तरोतर वृद्वि को प्राप्त होता है वैदिक काल में अशिक्षित व्यक्ति समाज के लिए कंलक समझा जाता था।अतः माता पिता अपने बच्चों को शिक्षित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे।

माता शत्रुः पिता बैरी, येन बालौ न पाढिनः।
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बकोः यथा।।

प्राचीन काल में शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा की एक विशिष्ट प्रणाली का निर्माण किया जो साम्राज्यों के पतन तथा समाज के परिवर्तनों से प्रभावित नही हुई और जिसने इन सहस्त्रों वर्षो के उपरान्त भी हमारे देश में शिक्षा की ज्योति को प्रज्वलित रखा है। अतः कहा जा सकता है कि दीर्घ अतीत मे भी हमारे देश में शिक्षा की अति सुन्दर व्यवस्था थी। व्यक्ति के बहुमुखी विकास के लिए ही शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता व महत्व था क्योंकि शिक्षा मानव के व्यक्तित्व का निर्माण उनकी मानसिक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास, उसके लिये जीवन के अर्थ तथा महत्व की व्याख्या और उसे इहलोक तथा परलोक दोनो में आत्मिक उत्थान करने में सहायता देती थी।

समस्या कथन

''वैदिक कालीन भारत में बाल शिक्षा के विकास का अध्ययन''।

अध्ययन के उद्देश्य :–

(i) वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्शों का अध्ययन करना ।

(ii) वैदिक कालीन शिक्षा के प्रथमिक स्तर का अध्ययन करना।

(iii) वैदिक कालीन शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन करना ।

प्रयुक्त शब्दावली :–

वैदिक कालीन शिक्षा :– वैदिक कालीन शिक्षा का तात्पर्य ज्ञान के उस स्रोत से लगाया जाता था जो मनुष्योंन्नति में पथ प्रदर्शन का कार्य करता है। श्री अल्तेकर ने ठीक ही लिखा है– ''वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का स्रेत है जो जीवन के विविध क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करता है शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण एवं सन्तुलित विकास करने वाली अन्तर्ज्योति और शक्ति है।'' प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। यद्यपि यह कहना निश्चित नही है कि वेद कितने पुराने है। लेकिन यह वेद हिन्दुओं के ही नही वरन् सम्पूर्ण विश्व का सर्वाधिक पुराना साहित्य आदिकाल में वेदों का ज्ञान लिपिबद्ध नही था। बहुत समय बाद ऋषियों के द्वारा वेदों को लिपिबद्ध किया गया। वेद शब्द की उत्पति 'विद्द' धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञान प्राप्त करना। अतः वेद शब्द का शाब्दिक अभिप्राय है जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश का स्रोत बताया गया है। शिक्षा व्यक्ति के भीतर योग्यता रूचियों व ज्ञान का विकास करती थी और इसका अंतिम सत्य मोक्ष की प्राप्ति था। शिक्षा मनुष्य का तृतीय नेत्र थी। सम्पूर्ण शिक्षा के माध्यम से वह तत्वों और तथ्यों को समझने के योग्य होता था। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास व सुधार का साधन था। शिक्षा व्यक्ति के मन पर नियंत्रण करके मोक्ष की और बढ़ने में सहायता करतीथी।

वैदिक शिक्षा से हमारा आशय उस शिक्षा से है जिसका विवरण वेदों में तथा वेदिक साहित्य में मिलता है। शिक्षा के आदर्शो सिद्वान्तों तथा विभिन्न पक्षों की चर्चा करने का जैसा रिवाज आजकल है वैसा कोई व्यवस्थित प्रयास प्राचीन भारत में संभवतः नही किया गया है। शिक्षा की आधुनिक प्रणाली पश्चिम की देन है और स्वयं पश्चिम में भी सत्रवीं शती से पूर्व इस प्रकार का प्रयास नहीं किया गया था। अतः वैदिक शिक्षा पर इक्ट्ठी और व्यवस्थित सामग्री कहीं नहीं मिलती। यों वेद उपनिष्द् धर्मसूत्र, स्मृति सुभाषित, संग्रह, ब्राह्मणग्रंथ, महाकाव्य, आदि साहित्य में तथा जन सामान्य में प्रचलित सूक्तियों में इस विषय पर बहुत सामग्री मिलती है।

बाल विकास :– बाल विकास से आशय है कि बालक में गर्भावस्था से किशोरावस्था तक होने वाले गुणात्मक व परिमाणत्मक परिवर्तन। ये परिवर्तन शारीरिक, मानसिक, भाषात्मक संवेगात्मक, सृजनात्मक आदि पक्षों में होतें है।

विकास की प्रक्रिया एक अविरल व क्रमिक प्रक्रिया है यह प्रक्रिया मां के गर्भ से आरम्भ होती है। एक छोटे से बीज से मां के गर्भ में फलता फूलता बच्चा पृथ्वी पर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है फिर शैशवस्था की देहरी पार करता हुआ किशोरावस्था तक पहुँच कर एक परिपक्व बालक बन जाता है। तभी उसे सामाजिक दृष्टि से एक उतरदायित्व पूर्ण सदस्य का दर्जा प्रदान कर व्यक्ति की संज्ञा दी जाती है। बालक वह नर या मादा व्यक्ति होता है जिसने अभी परिपक्वता ग्रहण नही की है। इस दृष्टि से बाल विकास के आयाम में गर्भाधान के समय से लेकर किशोरावस्था तक होने वाले वृद्धि एवं विकास के स्वरूप एवं प्रक्रिया समाहित है।

जैम्स ड्रेवर ''विकास वह दशा है जो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप में प्राणी में सतत् रूप से व्यक्त होती है। यह परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता है, यह विकास तन्त्र को सामान्य रूप में नियन्त्रित करता है यह प्रगति का मानदण्ड है और इसका आरम्भ शून्य से होता है।

मुनरो ''परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था है जिसमें बच्चा भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहलाता है।'' बाल विकास का स्वरूप दो सामान्य कारकों से प्रभावित होता है। बालक के पिता के पितृ सूत्रों की रचना तथा वंशक्रम तथा गर्भ स्थिति के बाद पड़ने वाले प्रभाव । बाल विकास के निश्चित मापदण्ड होते है व यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। बाल विकास सब बालको में समान नही होता है। कहने का तात्पर्य है कि बच्चों की देखभाल और शिक्षा दोनों पर समानरूप से ध्यान देना होगा।

6. परिसीमन :– प्रस्तुत शोध कार्य वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था तक सीमित रखा गया है।

(i) वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श :– वैदिक कालीन युग में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के नैतिक चरित्र का निर्माण करना था। जिससे इनमें अच्छे संस्कारों का विकास हो सके। ब्रह्मचर्य,

सदाचार, परमार्थ, जनहित भावना, परोपकार, सात्विक भोजन, गुरू व बड़ों का आदर, कर्तव्य पालन, धर्म के प्रति निष्ठा, उच्च विचार आदि संस्कारों को विकसित करके छात्रों को संस्कार युक्त बनाया जाता था।

''आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्त स्मार्त एवं च।

''वृतं यत्नेन वितमेति च याति च ! – मनु

अक्षिणों विततः क्षीणों वृत तस्तु हंतो हतः।। – महाभारत

''तात्पर्य यह है कि धन के नष्ट हो जाने पर उसे पुनः संग्रहित किया जा सकता है किन्तु एक बार चरित्र का विनाश हो जाये तो उसे पुनः प्राप्त करना असंभव है।'' ''सुभाषित रत्न संग्रह'' में हमें एक स्थान पर यह लेख मिलता है– 'ज्ञान मनुजस्य तृतीयं नेत्रं, अर्थात् ''ज्ञात मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने की क्षमता प्रदान करता है एवं उसे उचित व्यवहार करने में प्रवृत करता है।'' वैदिक कालीन शिक्षा में एक उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना भी है। हमारी संस्कृति प्रारंभ से ही धर्म प्रधान रही है। इस शिक्षा का उद्देश्य सदैव से अपनी संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना रहा है। नागरिक तथा समाजिक कर्तव्यों का पालन करना भी प्रमुख उद्देश्य रहा था। गुरू शिष्यों को पितृऋण गुरूकुल और देवऋण से मुक्त होने का उपदेश देते थे। इस युग में शिक्ष का उद्देश्य मानव का आत्मिक विकास करना था। सत्य और ब्रह्म अथवा मोक्ष की खोज जीवन का लक्ष्य था। धर्म प्रधान था तथा धर्म ही ईश्वर प्राप्ति का साधन था। शिक्षा सामाजिक कुशलता का विकास करती थी। डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार शिक्षा केवल सैद्वान्तिक और अकादमिक नही थी वरन् वह किसी न किसी शिल्प से सम्बद्व थी।

वेद याद करना, वैदिक साहित्य का संरक्षण करना स्वाध्याय करना उसकी व्याख्या में नए साहित्य का निर्माण करके ऋषि तर्पण करना आवश्यक कृत्य थे। किसी विद्यार्थी की योग्यता का प्रकरण 33 प्रतिशत उतीर्णांको के आधार पर प्राप्त किया हुआ किसी विश्वविद्यालय का प्रमाण–पत्र नही अपितु विदत्परिषद् में किसा हुआ शास्त्रार्थ था, जिसके लिए वह अपने जीवन में भी हमेशा तैयार रहता था। शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार जीवनोपयोगी उधम पशुपालन, कृषि, डेरीफार्म, चिकित्सा, व्यवसाय, युद्व कला आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था। स्वास्थ्य के संवर्द्धन एवं संरक्षण हेतु शिष्यों को प्रातः ब्रह्ममूहूर्त मेंउठना होता था तथा नियमित दिनचर्या का पालन करना होता था। उन्हे सत्य, अंहिसा, अस्तेय अपरिगृह और ब्रह्मचर्य के पालन करके और काम, क्रोध मोह और मद से दूर रहने की शिक्षा दी जाति थी। योग शिक्षा पर भी बल दिया जाता था। इसलिए छात्रों को विभिन्न प्रकार के अभ्यासों द्वारा अपनी चित वृतियों कानिरोध करने का प्रशिक्षण दिया जाता था।

इस प्रकार हम डॉ. आर.के. मुकर्जी के शब्दों में कह सकते है ''शिक्षा का उद्देश्य चितवृति निरोध, अर्थात् मन से उन कार्यो का निषेध था। जिनके कारण वह भौतिक संसार में उलझ जाता था। ईश्वर भक्ति व धर्मिकता की भावना का समावेश शिक्षा का उद्देश्य था। संसार से व्यक्ति की मुक्ति पर बल दिया जाता था – सा विद्या या विमुक्तये।'' अर्थात् व्यक्ति को मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती थी जब वह ईश्वर भक्ति और धार्मिकता की भावना से सराबोर हो। डॉ. ए.एस. अल्तेकर के अनुसार :– सब प्रकार की शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य छात्र को समाज का धार्मिक सदस्य बनाना था।

अतः प्राचीन शिक्षा के इन वैदिक कालीन उद्देश्यों की प्राप्ति का तात्पर्य वास्तविक मनुष्य अथवा मनुष्य को पूर्ण बनाना है और आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान के लिए छात्रों को तैयार करना रहा है ताकि विद्या से उनका लौकिक तथा पारलौकिक विकास हो सके।

(ii) **वैदिक कालीन शिक्षा का प्राथमिक स्तर :–** वैदिक काल मे प्राथमिक शिक्षा ऐसी थी जिस पर केवल ब्राह्मणों का ही आधिपत्य था। इसी कारण उन्होने धर्मग्रंथों में इसका विवरण न देकर इसकी उपेक्षा की है। संतोष कुमार दास ने ठीक लिखा है – ''ब्राह्मणों के पास उस शिक्षा की उपेक्षा करने के कारण थे, जो उनके हाथ में नही थे।''

ब्राह्मणों की उपेक्षा के बावजूद ऋग्वेद में यत्र तत्र ऐसेसंकेत मिलते है जिनसे पाठशाला की भाँति किसी शिक्षा संस्था की कल्पना की जा सकती है।

प्राथमिक शिक्षाः– वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा के स्तर को अस्वीकार नही किया जा सकता। प्रारंभिक स्तर की पाठ्यचर्या को प्रकाणिक करते हुये डॉ. सी.कुनहन राजा तथा ए.एस.अल्तेकर ने कहा है–

डॉ.सी.कुनहन राजा :– ''उपनयन संस्कार के विवरण से (जिसमें वेदों या उच्च शिक्षा का अध्ययन प्रारंभ होता है) और उपनयन के बाद छात्र के लिये निर्धारित किए हुए कर्तव्यों से यह बात निश्चित होती है कि बालक इससे पूर्व शिक्षा अवश्य प्राप्त करता था''।

ए.एस.अल्तेकर के अनुसार :– ''यह (प्राथमिक शिक्षा) परिवार के उस समय तक अवश्य दी जाती रही होगी। जब तक परिवार शिक्षा का केन्द्र रहा।''

उपरोक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में प्राथमिक या प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था थी। ऋग्वेद में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे पाठशाला के समान किसी संस्था का अनुमान किया जा सकता है। डॉ. वेद मित्र के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का आरंभ 5 वर्ष की आयु में ''विद्यारम्भ संस्कार'' से होता था, और सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य था। इसका अभिप्रायः यह है कि सभी जातियों के बालक प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर सकतें थे। इस शिक्षा की अवधि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई स्रोत उपलब्ध नही है पर डॉ. ए.एस. अल्तेकर का मत है कि इसकी अवधि 6 वर्ष की थी।

आज की प्राथमिक शिक्षा और वैदिक युग की प्राथमिक शिक्षा में अन्तर था। आज की भांति उस समय क, ख, ग अथवा गणित के आरंभिक सिद्धान्त नही पढ़ाये जाते थे। वैदिक काल में सर्वप्रथम छात्र–छात्राओं को वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना सिखाया जाता था। इसके पश्चात् विद्यार्थी पढ़ना–लिखना सीखते थे, और तदुपरान्त व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा प्रारंभ करने से पूर्व कुछ संस्कारों को पूर्ण किया जाता था। देवी सरस्वती व विनायक जी की पूजा की जाती थी। गुरू इस अवसर पर शिष्यों की चावलों से वर्णमाला सिखाता था। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के क्या विषय थे । इस बारे में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। इस अनुमान का आधार उस समय के धार्मिक और सामाजिक आदर्श एवं उच्च शिक्षा के पाठ्य विषय हो सकते है। इसी आधार पर डॉ. सी.कुनहन राजा ने लिखा है ''लिखने और पढ़ने के अलावा शिक्षा विशेष रूप से भाषा, साहित्य और शास्त्रों में दी जाती होगी।'' इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय रहे होगें–

1. लिखना और पढ़ना।
2. वेदों और शास्त्रों के मंत्रों को बोलना और कंठस्थ करना।
3. प्रारंभिक भाषा और साहित्य।
4. व्याकरण आदि।

(iii) वैदिक कालीन शिक्षा का स्वरूप :– वैदिक शिक्षा पूर्णतः वेदों पर आधारित है। इसका स्वरूप भी वेदों पर ही आधारित है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वैदिक संहिता, ब्राह्मण व आरण्यक (उपनिषद्) ग्रंथों की भी गणना है। वेद में गद्य व पद्य दोनों भाग है। वैदिक गद्य को यजुष् पद्य को ऋचा व गीतात्मक पद्य को साम माना जाता है, तथा वेद में तीन प्रकार के पदों के होने के कारण ही वेद 'त्रयी' भी कहलाते हैं। ऋचाओं व सामों का एक समूह सूक्त कहलाता है और 'सुक्त' का शाब्दिक अर्थ उत्कृष्ट उक्ति या सुभाषित होता है।

वेद व्यास ने वैदिक सूक्तों को संहिता का रूप दिया। उनके द्वारा संकलित वैदिक संहितायें चार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद इसमें ऋग्वेद प्राचीन है। उसमें 1017 सूक्त है। ऋग्वेद 10 मंडलों में विभक्त है, प्रत्येक ऋचा के साथ उनके ऋषि और देवता का नाम है, वेद न केवल भारत के लिए अपितु सारे विश्व के लिए प्राचीन साहित्य है। आचार्य सायण ने कृष्ण यजुर्वेद के भाष्य की भूमिका में वेद का अर्थ बताया है। ''वेद वह है जो इष्ट प्राप्ति व अनिष्ट वस्तुओं के दूरीकरण का अलौकिक उपाय बताने वाला हो। आर्यो का समस्त ज्ञान भण्डार वेद ही है।

निष्कर्ष :–

वैदिक शिक्षा भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली है। इस प्रणाली से विशुद्ध भारतीयता का भाव दृष्टिगोचर होता है। यह शिक्षा धर्म की आधारशिला पर निर्मित है। भारत की सबसे बड़ी विशेषता इसकी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की मूलभावना इसमें अन्तर्निहित है। शिक्षा द्वारा ही हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि जीवन क्षणभंगूर है। इस जीवन का मूल उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है और मोक्ष प्राप्ति केवल शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। प्राचीन काल में शिक्षा का अत्यधिक प्रसार हुआ । क्योंकि यह शिक्षा वेद पर आधारित है। वेदकलीन शिक्षा जानने के प्रमुख साधन चार वेद है– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अधर्ववेद । ऋग्वेद के द्वारा ही वैदिक शिक्षा क ज्ञान होता है। वेदकालीन शिक्षा जीवन से संबंधित थी । इसका

उद्देश्य व्यक्ति को सभ्य तथा उन्नत बनाता था । शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशुमात्र ही रह जाता था । चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नागरिक और सामाजिक कर्तव्यों पर बल, राष्ट्रीय संस्कृति का सरंक्षण और प्रसार आदि इस शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य रहे थे । प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का प्रारम्भ अल्पायु में 'विद्यारम्भ संस्कार' से होता था । प्राथमिक शिक्षा घर पर ही दी जाती थी । फिर विद्यार्थी गुरूकुल में अध्ययन कार्य करते थे । शिक्षा निःशुल्क थी । शिक्षा दान परम धर्म था । इस काल में शिक्षा का मौखिक रूप प्रचलित था। कंठस्थीकरण पर बल दिया जाता था । अध्यात्मिक तथा लौकिक पाठ्यक्रम था। शिक्षा वर्णानुकूल नहीं थी । स्वेच्छा से विषयों का चयन किया जा सकता था। वैदिक काल में अनुशासन पर भी अत्यधिक बल दिया जाता था । छात्रों की दिनचर्या बंधी हुई थी। गुरूसेवा अनिवार्य थी। छात्र के लिए सदाचार विनयशीलता तथा ब्रह्मचर्य व्रत पालन आवश्यक था। अतः कहा जा सकता है कि वैदिक काल की शिक्षा के सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक कड़वा सत्य यह है कि शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा गया जो कि वैदकि कालीन शिक्षा पर एक काला धब्बा है परन्तु फिर भी वैदकि काल में शिक्षा प्रणाली उच्च स्तर की थी।

(1) शिक्षा की मूलआधारों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना।
(2) बालक की भौतिक, मानशिक, सामाजिक, भावनात्मक, नैतिक तथा आद्यात्मिक आवश्यकताओं को पुरा करके उसके व्यक्तित्व का विकास करना।
(3) बालक ने देश प्रेम अपने रितिरिवाजों और संस्कृति के प्रति प्रेमभाव तथा उसमें नाकरकि गुण उत्पन्न करना जिससे वह देश प्रेमी तथा कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सके।
(4) बालक में अन्तर्राष्ट्रीय भाव तथा भाईचारे के भाव का विकास करना।
(5) वैज्ञानिक भाव उत्पन्न करना।
(6) श्रम के प्रति आदर भाव उत्पन्न करना।
(7) बालकों को वास्तविक क्रियाओं और अनुभव की जानकारी कराके भावी जीवन के लिए तैयार करना।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. मेहता डी0डी0, ''भारत में शिक्षा का विकास (2009)'' – Tendon Publications पृष्ठ सं.06
2. भटनागर सुरेश, ''भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास (2008)'' – आर.लाल बक डिप्पो, मेरठ, पृष्ठ सं. 03
3. शर्मा डॉ. जी.एस., ''भारत में शिक्षा का विकास (2008)'' – लारा बुक डिपो, मेरठ पृष्ठ सं. 09
4. शर्मा डॉ. के.के., चौपड़ा आर.एल., ''भारत में शेक्षिक व्यवस्था का विकास'' – स्वाति पब्लिकेशन्स, पृष्ठ सं.
5. पाठक पी.डी., ''भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं (2009)'' – पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ सं. 07
6. गुप्ता डॉ. एस.पी., गुप्ता डॉ.अल्का, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें'' – शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद, पृष्ठ सं.
7. भटनागर डॉ. ए.बी., भटनागर डॉ. मीनाक्षी, भटनागर डॉ. अनुराग, ''भारत में शैक्षिक प्रणली का विकास (2007)'' – पृष्ठ सं. 05
8. अग्निहोत्री रवीन्द्र, ''आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्याएं और समाधान (2008)'' – राजस्थान हिन्दी मेथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ सं. 02
9. ''भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं'' –राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा.लि., आगरा, पृष्ठ सं. 05
10. पाकेड़ा डॉ. रामशकल, मिश्र डॉ. करूणाशंकर, ''भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएं'' – आर.एस.ए. इन्टरनेशनल, आगरा, पृष्ठ सं. 01
11. अग्रवाल जे.सी., ''स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास (2004)''–आर्य बुक डिपो, पृष्ठ सं.39
12. भटनागर सुरेश, ''भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास (2008)'' – आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ सं. 03
13. शेखावत श्यामसुन्दर, ''भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास'' – श्री कविता प्रकाशन, 13 बी.सी.गुप्ता गार्डन, तिलक मार्ग, गोविन्द नगर (प.) आमेर रोड़, जयपुर, पृष्ठ सं. 4–5
14. खन्ना राजकुमार, ''भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास (2010)'' – 21वीं सदी प्रकाश, पटियाला, पृष्ठ सं. 1–2
15. सारस्वत डॉ.मालसी, प्रो. मदन मोहन ''भारतीय शिक्षा का इतिहास (2008–09)'' – न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 8–9, 25
16. डॉ. सचदेवा, डॉ. गुप्ता, ''भारत में शिक्षा पद्धति का विकास'' – विनोद पब्लिशर्स, ताजपुर रोड़, लुधियाना, पृष्ठ सं. 11